© 2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 7 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

श्रीमद्भगवद्गीता के आत्मतत्व की अवधारणा

वागीश मिश्र
शोध छात्र
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक इन त्रिविध दुःखों से पीड़ित मनुष्यों के समक्ष प्रायः एक प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या जिस प्रकार जगत् के दृश्यमान सभी पदार्थ नश्वर हैं, अनित्य हैं, क्या मनुष्य भी इसी प्रकार अनित्य है, क्या उसके दृश्यमान शरीरादि रूप के नष्ट हो जाने पर कुछ भी नहीं बचता? इसी के उत्तर में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया है कि शरीर के नष्ट हो जाने पर भी वह नष्ट नहीं होता, वह नष्ट न होने वाला अनश्वर या नित्य तत्त्व मनुष्य का अपना वास्तविक रूप है। यही आत्मा है। निष्कर्ष यह है कि मनुष्य मृत्यु के बाद भी रहता है, शरीर से नहीं, स्वरूप से। आत्मा शब्द स्वरूप का ही वाचक है। मनुष्य का यह स्वरूप अर्थात् उसकी आत्मा नित्य और अविनाशी है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को आत्मतत्त्व के विषय में उपदेश दिया है।

गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि यह शरीरी (आत्मा) अविनाशी है। यह सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है। इस अविनाशी तत्त्व का विनाश कोई भी नहीं कर सकता है।[1] जो मनुष्य इसको मारने वाला मानता है वह ठीक नहीं जानता क्योंकि शरीरी में कर्तापन का अभाव है और जो मनुष्य इसको मरा मानता है वह भी ठीक नहीं जानता क्योंकि जैसे यह शरीरी किसी को मारने वाला नहीं है, ऐसे ही वह मरने वाला भी नहीं है कयोंकि इसमें कभी कोई विकृति नहीं आती। जिसमें विकृति आती है वही मर सकता है। वस्तुतः शरीरी को मारने वाला और मरने वाला वे दोनों ये तथ्य नहीं जानते हैं कि यह शरीरी न मारता है और न मारा जाता है। यह निर्विकार रूप से ज्यों का त्यों रहने वाला है अतः इस शरीरी को लेकर शोक नहीं करना चाहिए।[2]

आत्मा की निर्विकारता एवं शरीर की निःसारता का वर्णन करते हुए भगवान् ने एक दृष्टान्त दिया है कि जैसे मनुष्य पुराने एवं जीर्ण–शीर्ण कपड़ों को छोड़कर दूसरे नये कपड़ों को धारण करता है ऐसे ही यह देही (आत्मा) पुराने शरीरों को छोड़कर दूसरे नये शरीरों को धारण करता है। पुराना शरीर छोड़ने को मरना (Death) कहते हैं और नया शरीर धारण करने को जन्म (Birth) लेना कहते हैं।[3] वस्तुतः आयु प्रतिरक्षण समाप्त हो रही है अर्थात् शरीर प्रतिक्षण जीर्ण हो रहा है, प्रतिक्षण मर रहा है। यह एक क्षण भी स्थिर नहीं है। जैसे, जवान होने से बालकपन मर जाता है और वृद्ध होने से यौवन मर जाता है।

भगवान् आत्मा के स्वरूप को अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं–यह आत्मा न तो कभी जन्मता है, न कभी मरता है यह अज, नित्य, शाश्वत और पुराण है–

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।

अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे।।[4]

शरीर में छः प्रकार के रूपान्तर होते हैं।[5] वह माता के गर्भ से जन्म लेता है, कुछ काल तक रहता है, बढ़ता है, कुछ परिणाम उत्पन्न करता है, कुछ क्षीण होता है और अन्त में समाप्त हो जाता है। किन्तु आत्मा इन छः रूपान्तरों से रहित हैं जिस प्रकार शरीर उत्पन्न होता है वैसे यह आत्मा कभी भी किसी भी समय में उत्पन्न नहीं होता, यह तो सदा से ही है भगवान् ने इ आत्मा को अपना अंश बताते हुए इसको सनातन कहा है।[6] यह आत्मा कभी मरता भी नहीं है मरता वही है जो पैदा होता है यह अविनाशी नित्य तत्त्व पैदा होकर फिर होने वाला नहीं है अर्थात् यह स्वतद्ध सिद्ध निर्विकार है। आत्मा का कभी भी जन्म नहीं होता इसलिए भगवान् ने इसे अज कहा है। यह आत्मा नित्य–निरन्तर रहने वाला है, अतः इसका कभी अपक्षय नहीं होता, अपक्षय तो अनित्य वस्तु में होता है इसीलिए इसे नित्य कहा गया है। वह नित्य तत्त्व निरन्तर एकरूप रहने वाला है। इसमें अवस्था का परिवर्तन नहीं होता यह कभी बदलता नहीं है इसलिए यह शाश्वत है। यह अविनाशी तत्त्व अनादि है शरीर का नाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता अतः पुराण है।

इस शरीरी को शस्त्रादि नहीं काट सकते क्योंकि ये प्राकृत शस्त्र वहाँ तक पहुँच ही नहीं सकते जितने भी शस्त्र हैं वे सभी पृथ्वी तत्त्व से उत्पन्न होते हैं। यह पृथ्वी तत्त्व इस शरीरी में किसी तरह का विकार पैदा नहीं कर सकता। अग्नि इस शरीरी को जला नहीं सकती क्योंकि अग्नि तत्त्व अग्नि तत्त्व शरीरी में कोई विकृति उत्पन्न कर ही नहीं सकता। वायु इसको सुखा नहीं सकती, क्योंकि वायु तत्त्व में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि इसमें कोई विकार पैदा कर सके। जल तत्त्व इसको गीला नहीं कर सकता क्योंकि जल में इतना सामर्थ्य है ही नहीं।[7] भगवान् ने पंचमहाभूतों (पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश) में से केवल चार महाभूतों की बात कही है कि ये पृथ्वी, जल, तेज, वायु इस शरीरी में किसी तरह की विकृति नहीं कर सकते परन्तु पाँचवे महाभूत आकाश की चर्चा नहीं की, कारण यह है कि आकाश में कोई क्रिया करने की शक्ति नहीं है क्योंकि आकाश तो इन चार महाभूतों को केवल अवकाश मात्र देता है और दूसरा कारण यह है कि पृथ्वी, जल, वायु, तेज ये चारों तत्त्व आकाश के अंश से ही उत्पन्न होते हैं और वे उसमें ही कोई विकार पैदा नहीं कर पाते तो आत्मा में क्या करेंगें क्योंकि आकाश को आत्मा से प्रादुर्भूत माना जाता है–आकाशः आत्मनः सम्भूतः।[8]

विभिन्न प्रकार के शस्त्रादि इस शरीरी में विकार उत्पन्न क्यों नहीं कर सकते इसके उत्तर में गीता कहती है–

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च।

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः।।[9]

शस्त्र इस शरीरी का छेदन नहीं कर सकते क्योंकि छेदनरूपी क्रिया शरीरी में प्रविष्ट नहीं हो सकती, अतएव इसे अच्छेद्य कहा गया है। शरीरी में दहन क्रिया का प्रवेश ही नहीं हो सकता, इसमें जलने की योग्यता नहीं है। इस कारण भगवान् ने इसे अदाह्य कहा है। जल इस शरीरी को गीला नहीं कर सकता, कारण कि इसमें गीला होने की योग्यता का अभाव है, इसलिए यह अक्लेद्य है। इस शरीरी का वायु से शोषण नहीं हो सकता, क्योंकि इसमें शोषण क्रिया का प्रवेश नहीं होता अतः यह अशोष्य है। यह देही (आत्मा) सम्पूर्ण व्यक्ति, वस्तु, शरीर आदि में एकरूप से विराजमान है, व्याप्त है यह कहीं है और कहीं नहीं है ऐसा नहीं है, इसलिए इसे सर्वगत कहा गया है। यह शरीरी स्थिर स्वभाव वाला है अर्थात् इसमें कभी यहाँ और कभी वहाँ इस प्रकार आने–जाने की क्रिया नहीं है। इसलिए यह अचल है। यह शरीरी स्थाणु है अर्थात् इसमें हिलने की क्रिया नहीं है। यह क्रियारहित, परिवर्तन रहित तथा स्थायी स्वभाव वाला तत्त्व है। यह शरीरी अनादिकाल से है, यह किसी समय नहीं था ऐसा सम्भव नहीं है अतः यह सनातन है।

यह शरीरी दिखाई देता है? अथवा क्या यह चिन्तनीय है इसके उत्तर में गीता में कहा गया है–

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि।।[10]

तात्पर्य यह है कि जैसे शरीर, संसार आदि स्थूल रूप से देखने में आता है वैसे यह शरीरी स्थल रूप से देखने में आने वाला नहीं है क्योंकि यह स्थूलसृष्टि से रहित है अतः यह अव्यक्त है। मन, बुद्धि आदि देखने में तो प्रत्यक्ष नहीं आते परन्तु चिन्तन में आते ही हैं अर्थात् ये सभी चिन्तन के विषय हैं। परन्तु यह शरीरी चिन्तन का विषय नहीं है क्योंकि यह सूक्ष्म सृष्टि से रहित है इसलिए इसके लिए अचिन्त्य पद का प्रयोग हुआ है। सबका कारण प्रकृति है, उस कारण भूत प्रकृति में भी विकृति होती है, परन्तु इस शरीरी में किसी भी प्रकार की विकृति नहीं होती क्योंकि यह कारणसृष्टि से रहित है अर्थात् अविकारी है। इस बात का समर्थन सांख्य दर्शन भी करता है, वहाँ भी पुरुष को किसी का न तो कारण बताया गया है और न ही किसी का कार्य।[11]

अतः एव आत्मा को इस रूप में जानकर व्यक्ति को जीवन–मरण के विषय में शोक नहीं करना चाहिए। क्योंकि जन्म, मरण, विधि अर्थात् ब्रह्म के अधीन है।[12]

सन्दर्भ ग्रन्थ–सूची

1. अविनाशी तुद्विद्धि ये सर्वमिदं ततम्।
   विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति।। –श्रीमद्भगवद्गीता, 2.17
2. ये एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
   उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते।।––श्रीमद्भगवद्गीता, 2.19
3. वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
   तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही।।

–श्रीमद्भगवद्गीता, 2.22

4. श्रीमद्भगवद्गीता, 2.20

5. जायतेऽस्ति विपरिणमते वर्धतेऽपक्षीयते विनश्यति इति।

–आचार्य यास्क, निरुक्त, 1.1.2

6. ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।– –श्रीमद्भगवद्गीता, 15.7

7. नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।।––श्रीमद्भगवद्गीता, 2.23

8. द्रष्टव्य–अन्नंभट्टकृत तर्कसंग्रह

9. श्रीमद्भगवद्गीता, 2.24

10. श्रीमद्भगवद्गीता, 2.25

11. मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त।
षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः।।

–ईश्वरकृष्णकृत सांख्यकारिका–श्लोक संख्या–3

11. सुनहु भरत भावी प्रबल बिलखि कहेऊ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवनु मरनु जसु अपजसु विधि हाथ।।

–गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड दोहा।